Indian Streams Research Journal
ISSN 2230-7850
Impact Factor : 2.1506(UIF)
Volume-4 | Issue-11 | Dec-2014
Available online at www.isrj.org

'भक्तिकालीन निर्गुण संप्रदाय के संत रैदास की सामाजिक एकात्मता

डॉ.सुरेशकुमार केसवानी
एम.ए., बी.एड, एम.फिल., पीएच.डी
अधिव्याख्याता, विभाग प्रमुख हिन्दी , सीताबाई कला महाविद्यालय,अकोला..

सारांश : रैदास ने तत्कालीन युग में प्रचलित संपूर्ण साधना पद्धतियों एवं विचारों का समन्वय करते हुए नवयुग के अनुरूप एक ऐसी सर्वांगीण पद्धति दी थी जिसमें प्रत्येक विचारधारा का लाभकारी स्वरूप समाविष्ट था, उसका हानिकर या अधिक वैधी रूप तथा बाह्य चरण पूर्ण रूपेण बहिष्कृत कर दिया गया था । तत्कालीन परिप्रेक्ष्य में रैदास की विचारधारा ने सामाजिक पुनर्व्यवस्थापन के उस युग में एकमात्र अस्त्र धार्मिक चिंतन को समन्वित एवं सरलतम रूप में प्रस्तुत करने के कार्य को बहुत आगे बढ़ाया । जहां कतिपय संतों के संप्रदाय भी आज छुटपुट रूप में ही आते हैं, भारत एक बहुत बड़ा समुदाय आज भी अपने को रैदास–पंथी कहकर गौरवान्वित होता है । इसके पीछे किसी जाति विशेष का मात्र आग्रह नहीं हो सकता वरन् रैदास की सर्वग्राह्य विचारधारा, उनके व्यक्तित्व की महानता तथा विचार प्रकाशन की ग्रहणीय शैली ही सर्व प्रमुख कारण है । संत रैदास की विचारधारा आज भी प्रचलित सामाजिक अंतर्विरोधों एवं समस्याओं का समाधान निकालने में एक सीमा तक सहयोग दे सकती है, विशेषतरू उनका जीवन, विचारधारा तथा अभिव्यक्ति शैली यदि आज के परिप्रेक्ष्य में समझी जाए तो आजकल के समाज सुधारकों एवं अग्रणी व्यक्तियों के प्रति वह पर्याप्त मार्गदर्शक बन सकती है । उनकी वाणी में दीन–हीन और शोषितों के प्रति एक विकल पीड़ा, अपमान के विरुद्ध समाधान में प्रतिफलि घुटन और समस्याओं के प्रति एक जागरूक दृष्टि थी तथा वे भली प्रकार जानते थे कि पुरातनता से किस प्रकार ग्रहण किया जाये, परंपरा को किस स्थान तक सुरक्षित रखा जाए और नवीन परिस्थितियों के अनुरूप किस प्रकार मार्ग बनाया जाये । उनकी वाणी की इन्हीं विशेषताओं ने उनको अपने युग का ही नहीं सदा सर्वदा के लिए एक महान विचारक, चिंतक तथा समाज सुधारक के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया है ।

प्रस्तावना :–

संत रैदास अथवा रविदास एवं विंह्वचित् उच्चारण भेद के साथ इसी से मिलने वाले अनेक नाम देश के विभिन्न भागों में प्रचलित मिलते हैं । इस सम्बन्ध में मिलने वाले विभिन्न नाम हैं ––रविदास, रैदास, रायदास, रुद्रदास, रुईदास, रयिदास, रोहिदास, रोहितास, रुहदास, रमादास, रामदास, हरिदास । इनमें से रविदास तथा रैदास दो नाम तो ऐसे नाम हैं जो दोनों ही संत रैदास की रचनाओं में उपलब्ध होते हैं ।शेष नाम उनकी रचनाओं में कहीं नहीं मिलते । वे सभी नाम विभिन्न अन्य लेखकों या अन्य व्यक्तियों के द्वारा उनके लिए प्रयोग किए गए हैं । गुरू–ग्रन्थ साहब में रविदास नाम से ४० पद तथा एक सलोक संकलित है । इस रचनाकार के विषय में काशी का निवासी तथा जाति से चमार होने का वर्णन मिलता है । संत रैदास कबीर के समकालीन थे तथा मीराबाई के गुरू थे ।

संत रैदास ने अन्य संत एवं भक्त कवियों की ही भांति अपने विषय में कुछ विशेष परिचय नहीं दिया है, बस उनके द्वारा रचे गए कतिपय पदों के द्वारा केवल उनकी जाति, कुल, परिवार (१), निवास स्थान (२), प्रारंभिक काल में अपमानपूर्ण जीवन (३), पश्चाद्वर्ती जीवन में सम्मान (४) एवं जीवनयापन (५) की विधि पर ही प्रकाश पड़ता है ।

(१)नागर जनां मेरी जाति विखियात चमारं । (पद ६०)
कह रैदास खलास चमारा। (पद ५)
(२)मेरी जाती कुटवांडला ढोर ढोवन्ता, नितहि बनारसी आसपासा (पद ६०)
(३)दारिद देख सभको हंस ऐसी दशा हमारी । (पद ५४)
हम अपराधी नीच घर जन्में कुटुम्ब लोक करे हांसी रे (पद १०७)
(४)अब विप्र परधान तिहि करहि डंडउति ।
तेरे नाम सरणाइ रविदासु दासा । (पद ६०)
नीचे से प्रभु ऊंच कियो है कह रविदास चमारा (पद ६६)

(५)चमरटा गांठि न जनइ, लोग गठावे पनही। (पद ३१)

संत रैदास की सामाजिक एकात्मता

संत रैदास की सामाजिक एकात्मता समाज कल्याण के रूप में मुखरित हुई है । विद्वानों ने मात्र ऐसी साधना जिसमें केवल अपना कल्याण हो, उसे कभी प्रश्रय नहीं दिया है ।१ भारतीय पुरातन समाज में भी परोपकार का जीवन में आद्योपांत महत्व रखते हुए भी जीवन के अंतिम आश्रम सन्यास में सन्यासी का कर्तव्य लोक को अभय देना ही बताया गया था , और संतों के इस रूप की ही, लोक–पीड़ा को समाहित कर लोक कल्याणकारी रूप की वांङमय में भूरि–भूरि प्रशंसा की गयी है । इसलिए संतों को प्रभु का स्वरूप, प्रभु का प्रतिनिधि आदि कहकर परम पूज्य बताया गया है ।

संत रैदास गुफा में बैठकर साधनादि करके केवल अपने मोक्ष का प्रबंध करनेवाले मात्र एकांगी संत न थे, वरन् उनकी साधना की मूलभूत मान्यता ही लोक का कल्याण थी । वे उस व्यक्ति को ही साधु मानने को तत्पर थे जिनके कार्यों के द्वारा लोक का कल्याण हो –

सब सुख पावै जासु ते, सो हरि जू के दास ।
कोऊ दुरूख पावै जासु ते सो न दास हरिदास ।। २

प्रकारांतर से समाज–कल्याण की इस मान्यता को लगभग सभी संतों ने स्वीकार किया था और अपने जीवन के आदर्शों तथा पथ में इसे उतारा था । कबीर ने भी अपनी वाणी का विस्तार समाज के कल्याण के लिए किया था ।३ परवर्ती संत चरणदास ने अपने गुरू के विचारों की स्रोतस्विनी जगत् की प्यास बुझाने के लिए प्रवाहित की थी ।४ अस्तु, रैदास ने तत्कालीन समाज की पीड़ा को समझा था और व्यवहारिक रूप से उसका समाधान निकालकर अपनी वाणी के माध्यम से उस समाधान को सामान्य जनता में प्रसारित किया ।

रैदास के समय में परंपरावाद समाज को प्रबल रूप में प्रतिबंधित किए हुए था । यद्यपि पूर्वकालीन समाज सुधारकों एवं संतों ने उसके विरुद्ध स्वर उठाए थे, समाधान निकालने की चेष्टा की थी, विंह्रतु परंपरावाद का जटिल रूप पूर्ववत चला आ रहा था । रैदास को स्वयं अपने जीवन में अनेक स्थलों पर उसके विस्तृत रूप का सामना करना पड़ रहा था । उसका रैदास ने स्थान–स्थान पर विरोध भी किया था । दूसरी ओर लगातार के विदेशी आक्रमण तथा भारतीय समाज की निरंतर पराजय ने पराभव की एक हीन प्रवृत्ति भी समाज में भर दी थी । आगंतुक नवीन संस्कृति के कुछ नवीन शुभ विचारों एवं पराभव की अवस्था में पूर्वाग्रह तथा परंपरा पूर्ववत् चलती नहीं रह सकती थी । यदि तत्कालीन युग में भारतीय समाज को जीवित रहना था तो उसमें पुनर्संयोजन की परम आवश्यकता थी, एक ऐसे पुनर्संयोजन की जो भारतीय समाज को नए युग के अनुरूप विचार दे सके । पूर्ववर्ती भक्त और संत यथा नामदेव, ज्ञानदेव, रामानंद और कबीर आदि इस आवश्यकता की पूर्ति की एक अनिवार्य कड़ी बनकर अवतरित हुए थे, विंह्रतु ज्ञानदेव, नामदेव, महाराष्ट्रीय संत थे, उत्तर भारत की उनकी यात्राओं ने नवीन विचार के उपयुक्त पृष्ठभूमि तथा प्रेरणा तो दे दी विंह्रतु स्पष्ट ही उत्तर भारत पर उनका कोई स्थायी प्रभाव नहीं रह सका । रामानंद ने नवीन विचार को पृष्ठभूमि तथा चिंतन तो दे दिया विंह्रतु फिर भी उसको व्यवहारिक रूप में उतारने की एक बहुत बड़ी आवश्यकता थी । कबीर ने आवश्यक विचारों को रखा, जीवन के व्यवहार में भी उतारा, विंह्रतु फिर भी वह समाज को उतने प्रभावकारी रूप में स्वीकृत न हो सके, आंशिक रूप से उनके विचारों की अक्खड़ता तथा प्रचार की अटपटी भाषा भी इसका कारण रही होगी । रैदास वह प्रथम संत थे जिन्होंने इस नवीन युग के अनुरूप ग्राह्य विचारधारा को सर्वस्वीकृत रूप में प्रस्तुत किया ।

मध्यकाल (विशेषतर भारतवर्ष के लिए) धर्म–प्रवण काल था और उस काल में सामाजिक पुनर्गठन या सुधार का कार्य धर्म की ही भाषा में सर्वश्रेष्ठ रूप में हो सकता था । उस काल के सभी समाज सुधारक या महापुरुष, जिनको जनता ने सम्मान दिया, राजदर्शी नहीं, धर्म प्रवण या धार्मिक महापुरुष ही हुए हैं । रैदास ने भी इस समाज सुधार का कार्य धर्म का आधार लेकर उठाया । इसका तातपर्य यह कदापि नहीं है कि रैदास मूलतरू धार्मिक पुरुष या भक्त नहीं थे, वरन् वास्तविकता तो यह है कि मध्यकाल में सामाजिक ढांचा ही धर्म की भिति पर खड़ा था, अतरू कोई भी सामाजिक विचार धर्म से स्वतंत्र नहीं चल सकता था । उसे यदि सुधार करना था तो पहले धार्मिक ढांचे में परिवर्तन करने की आवश्यकता थी । कोई भी परिवर्तन की बात, धर्म में परिवर्तन की बात पहले थी, समाज की बाद को । उस समय का चिंतन धर्म की ही भाषा जानता था, अस्तु, रैदास ने तत्कालीन युग में परंपरा से चले आ रहे सामाजिक अन्याय के परिणाम स्वरूप तत्कालीन परिस्थितियों में हो रहे ध्वस्त भारतीय समाज के सामने सामाजिक समता तथा धर्म और भक्ति के क्षेत्र में प्रत्येक व्यक्ति के समान अधिकार की बात कहकर नवयुग की सबसे बड़ी आवश्यकता का उद्घोष किया । जब ईश्वर और भक्ति के दरबार में मूलतरू प्राणी मात्र की समता की प्रतिष्ठा के सामने समाज का घृणा पर आधारित सिद्धांत कितने दिन चल सकता था । इसी सिद्धांत की प्रतिष्ठा के लिए परंपरा, परंपरागत धर्म, रूढ़ियां और वह मूर्ति जो सबके प्रति पूज्य नहीं थी, रैदास के विरोध का पात्र बनी । जन्मजात उच्चता एवं मूर्ति की आस्था तो उस युग में अपना बहुत बड़ा उपहास देख चुकी थी, अतरू रैदास की युगानुरूप बात जनता को शीघ्र ही ग्राह्य हुई ।

धार्मिक क्षेत्र की संकीर्णताएं तथा परस्पर विभेद भी अब इस नये युग में संघर्ष के विरुद्ध खड़े नहीं रह सकते थे । प्रत्येक संप्रदाय तथा उसका उप संप्रदाय अपनी स्पर्धात्मक श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिए अपने वैधी रूप एवं कर्मकांड की अति में उलझता चला जा रहा था । रैदास ने उनमें से किसी का विरोध न करके उनमें से सबकी अंतरात्मा को लेकर जो एक दूसरे से बहुत अधिक भिन्न नहीं होती, एक समन्वित विचारधारा दी, जिसमें जहां एक ओर साधन के सभी बाह्य जटिल रूपों की आलोचना की गयी थी वहां धर्म के मूल स्वरूप को पहचानने की चेष्टा भी की गयी थी और यह सरल पद्धति तत्कालीन जनमानस की बहुस्वीकृति पद्धति बन गयी ।

तत्कालीन समाज में चले आ रहे हिंदू–मुस्लिम सांस्कृतिक संघर्ष को भी रैदास अच्छी दृष्टि से नहीं देखते थे । उन्होंने उन दोनो ही धर्मों उनके इष्ट में मूलभूत समता मानकर पारस्परिक सौहार्द का संदेश दिया । उन्होंने स्पष्ट कहा –

'' कृष्ण करीम राम हरि राघव जब लगि एक न पेषा ।
वेद कतेव कुरान पुरानन सहज एक करि भेषा ।।

अस्तु वस्तुतरू उस सामाजिक तनाव के युग में यह एकता का अभूतपूर्व संदेश था ।

इस प्रकार रैदास ने तत्कालीन समाज की परिस्थितियों को आत्मसात किया, उनको समझा और अपनी वाणी में उन समस्याओं का एक व्यावहारिक समाधान उस काल के सर्वश्रेष्ठ साधन धर्म के द्वारा दिया । वे एक आदर्श भक्त एवं विचारक के साथ साथ तत्कालीन समाज के एक बहुत बड़े सुधारक भी थे, जिनकी वाणी ने समाज को तत्कालीन युग में एक समाधानपूर्ण विचारधारा दी थी ।

उपसंहार

रैदास ने तत्कालीन युग में प्रचलित संपूर्ण साधना पद्धतियों एवं विचारों का समन्वय करते हुए नवयुग के अनुरूप एक ऐसी सर्वांगीण पद्धति दी थी जिसमें प्रत्येक विचारधारा का लाभकारी स्वरूप समाविष्ट था, उसका हानिकर या अधिक वैधी रूप तथा बाह्य चरण पूर्ण रूपेण बहिष्कृत कर दिया गया था । तत्कालीन परिप्रेक्ष्य में रैदास की विचारधारा ने सामाजिक पुनर्व्यवस्थापन के उस युग में एकमात्र अस्त्र धार्मिक चिंतन को समन्वित एवं सरलतम रूप में प्रस्तुत करने के कार्य को बहुत आगे बढ़ाया । उनके विचारों में उतनी ही क्रांति थी जितनी तत्कालीन किसी भी अन्य विचारक के विचारों में थी, या हो सकता है, वरन् सामाजिक अन्याय के विरुद्ध उनकी अंतर्पीड़ा अनेक स्थलों पर पूह्टट–पूह्टट पड़ी है, विंह्तु उनकी अभिव्यक्ति शैली में एक संत का संतोष एवं भक्त का धैर्य था, न कि एक राजनैतिक नेता का जोश और फटकार की भाषा । उनकी विचारधारा की युगानुवूह्लता एवं उसको ग्राह्य रूप में प्रस्तुत करने की सुंदर शैली का ही परिणाम हम देखते हैं कि लगभग सभी संतों की भांति अंत्यज वर्ग में जन्म लेकर, जीवन में अनेक बार तथाकथित पंडितों के द्वारा अपमानित होने के बाद भी रैदास को अपने समय में किसी भी धार्मिक नेता से अधिक सम्मान मिल सका । जहां कतिपय संतों के संप्रदाय भी आज छुटपुट रूप में ही आते हैं, भारत एक बहुत बड़ा समुदाय आज भी अपने को रैदास–पंथी कहकर गौरवान्वित होता है । इसके पीछे किसी जाति विशेष का मात्र आग्रह नहीं हो सकता वरन् रैदास की सर्वग्राह्य विचारधारा, उनके व्यक्तित्व की महानता तथा विचार प्रकाशन की ग्रहणीय शैली ही सर्व प्रमुख कारण है ।

संत रैदास की विचारधारा आज भी प्रचलित सामाजिक अंतर्विरोधों एवं समस्याओं का समाधान निकालने में एक सीमा तक सहयोग दे सकती है, विशेषतरू उनका जीवन, विचारधारा तथा अभिव्यक्ति शैली यदि आज के परिप्रेक्ष्य में समझी जाए तो आजकल के समाज सुधारकों एवं अग्रणी व्यक्तियों के प्रति वह पर्याप्त मार्गदर्शक बन सकती है । उनकी वाणी में दीन–हीन और शोषितों के प्रति एक विकल पीड़ा, अपमान के विरुद्ध समाधान में प्रतिफलि घुटन और समस्याओं के प्रति एक जागरूक दृष्टि थी तथा वे भली प्रकार जानते थे कि पुरातनता से किस प्रकार ग्रहण किया जाये, परंपरा को किस स्थान तक सुरक्षित रखा जाए और नवीन परिस्थितियों के अनुरूप किस प्रकार मार्ग बनाया जाये । उनकी वाणी की इन्हीं विशेषताओं ने उनको अपने युग का ही नहीं सदा सर्वदा के लिए एक महान विचारक, चिंतक तथा समाज सुधारक के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया है ।

सहायक ग्रंथ

१.संत रविदास – रामानन्द शास्त्री तथा विरेन्दर पांडेय
२.रैदास की वाणी – विल्वेडियर प्रेस इलाहबाद
३.मध्ययुगीन भारत – डॉ.आशीर्वादी लाल (१९६२)
४.सन्त साहित्य – डॉ.सुदर्शन सिंह मजीठिया
५.सन्त रैदास – संगमलाल पांडेय
६.संत रविदास – रामानन्द शास्त्री तथा विरेन्दर पांडेय
७.हिंदी काव्य में निर्गुण संप्रदाय – डॉ.पीतांबर दत्त बड़थ्वाल
८.संत रैदास – डॉ.योगेन्द्र सिंह